लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण,
पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं ।
मैं अरस, अरूपी, अस्पर्शी,
पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं ।।
मैं रंग-राग से भिन्न, भेद से
भी मैं भिन्न निराला हूँ ।
मैं हूँ अखण्ड, चैतन्यपिण्ड,
निज रस में रमने वाला हूँ ।।
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता,
मुझ में पर का कुछ काम नहीं ।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ,
पर में मेरा विश्राम नहीं ।।
मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक,
पर-परिणति से अप्रभावी हूँ ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व,
मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ ।।

—डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(भगवान महावीर 26 सौ वाँ जन्म-जयन्ती वर्ष)

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए–४, बापूनगर, जयपुर – ३०२०१५

फोन : 0141 – 2707458, 2705581

हिन्दी :

प्रथम सत्ताईस संस्करण (26 दिसम्बर 1990 से अद्यतन)	:	1 लाख 31 हजार 600
अट्ठाईसवाँ संस्करण 12 जुलाई 2006 (वीर शासन जयन्ति)	:	3 हजार
योग	:	1 लाख 34 हजार 600

अंग्रेजी :

प्रथम तीन संस्करण	:	9 हजार 200
महायोग	:	1 लाख 43 हजार 800

मूल्य : **चार रुपये**

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईस गोदाम, जयपुर

Thanks & Our Request

This shastra has been kindly donated by Dakshaben Sanghvi, Geneva, Switzerland who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of Laghu Jain Siddhant Praveshika (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	2 November 2009	First electronic version

प्रकाशकीय

प्रस्तुत कृति लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका का संकलन शिक्षण शिविरों में आध्यात्मिक लाभ लेने हेतु आने वाले आत्मार्थी को जिन-सिद्धान्तों एवं जिन-आध्यात्म के आवश्यक पारिभाषिक शब्दों की जानकारी देने के लिए किया गया था।

ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी एक ऐसी पारिभाषिक शब्दावली होती है जिसके जाने बिना उस विषय में प्रवेश भी सम्भव नहीं होता। जिन-सिद्धान्तों एवं जिन-अध्यात्म की भी अपनी एक शब्दावली है। जिनागम एवं जिन अध्यात्म में प्रवेश के लिए उससे परिचित होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

इसप्रकार का यह प्रथम प्रयास नहीं है, इसके पूर्व भी पण्डित श्री गोपालदासजी बरैया ने 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' नामक ग्रन्थ की रचना की थी जो कि अपने आप में महत्वपूर्ण कृति है। उक्त उपयोगी कृति के उपलब्ध होने पर भी इस संकलन की आवश्यकता इसलिए महसूस की गई कि उसमें करणानुयोग व न्याय सम्बन्धी कुछ जटिल प्रकरण भी हैं, जिनका अध्ययन आध्यात्मिक रुचि वाले व्यापारी आत्मार्थियों के लिए बीस दिन के अत्यल्प बीस दिन के अत्यल्प समय में न तो सम्भव ही था और न अपेक्षित ही। अतः 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' के आधार पर लिखी गई इस 'लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' नामक कृति को बीस दिवसीय शिक्षण शिविरों की पाठ्य पुस्तिका के रूप में अत्यल्प मूल्य में प्रकाशित किया गया था।

इस कृति का मुख्य आधार यद्यपि बरैयाजी की 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' ही है, तथापि इसमें जिनागम के अन्य ग्रन्थों का आधार भी लिया गया है। अब तक यह कृति लाखों की संख्या में छपकर जन-जन तक पहुँच चुकी है।

सदा की भांति पुस्तक प्रकाशन का दायित्व विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल ने सम्हाला है जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। जिन महानुभावों ने पुस्तक के प्रकाशन में अपना सहयोग दिया है ट्रस्ट उनका आभारी है।

– ब्र. यशपाल जैन

प्रकाशन मंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका

मंगलाचरण

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं, ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्त्तात्मा, मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

प्रश्नोत्तर

१. विश्व किसे कहते हैं ?

उत्तर :– छह द्रव्यों के समूह को विश्व कहते हैं।[1]

२. द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :– गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

३. गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों में और उसकी सम्पूर्ण अवस्था में रहता है, उसे गुण कहते हैं।

४. पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– गुणों के कार्य (परिणमन) को पर्याय कहते हैं।

५. गुणों के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दो भेद हैं – 1. सामान्य और 2. विशेष।

६. सामान्य गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जो सब द्रव्यों में रहते हैं, उन्हें सामान्य गुण कहते हैं।

७. विशेष गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने–अपने द्रव्यों में रहते हैं, उन्हें विशेष गुण कहते हैं।

८. सामान्य गुण कितने हैं ?

उत्तर :– अनन्त हैं, परन्तु उनमें छह मुख्य हैं –

1. अस्तित्व 2. वस्तुत्व 3. द्रव्यत्व 4. प्रमेयत्व 5. अगुरुलघुत्व और 6. प्रदेशत्व।

---

1. द्रव्य जाति अपेक्षा छह और संख्या अपेक्षा अनन्त हैं।

९. अस्तित्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कभी नाश नहीं होता और किसी से उत्पन्न भी नहीं होता, उसे अस्तित्व गुण कहते हैं।

१०. वस्तुत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस शक्ति के कारण द्रव्य में अर्थक्रियाकारित्व होता है, उसे वस्तुत्व गुण कहते हैं।

११. द्रव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस शक्ति के कारण द्रव्य की अवस्थायें निरन्तर बदलती रहती हैं, उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं।

१२. प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय हो, उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

१३. अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस शक्ति के कारण द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है। अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता है, एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता है और द्रव्य में रहनेवाले अनन्त गुण बिखरकर अलग–अलग नहीं हो जाते हैं, उसे अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।

१४. प्रदेशत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य रहता है, उसे प्रदेशत्व गुण कहते हैं।

१५. द्रव्यों के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– द्रव्यों के छह भेद हैं – 1. जीव 2. पुद्गल 3. धर्म 4. अधर्म 5. आकाश और 6. काल।

१६. प्रत्येक द्रव्य में कौन–कौन से विशेष गुण हैं ?

उत्तर :– जीव द्रव्य में चैतन्य (दर्शन–ज्ञान), सम्यक्त्व, चारित्र, सुख,

क्रियावतीशक्ति [1] इत्यादि; पुद्गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, क्रियावतीशक्ति इत्यादि; धर्म द्रव्य में गतिहेतुत्व इत्यादि; अधर्म द्रव्य में स्थितिहेतुत्व इत्यादि; आकाश द्रव्य में अवगाहनहेतुत्व इत्यादि एवं काल द्रव्य में परिणमनहेतुत्व इत्यादि विशेष गुण हैं।

१७. जीव द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिसमें चेतना अर्थात् ज्ञान–दर्शनरूप शक्ति है, उसे जीव द्रव्य कहते हैं।

१८. पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण – ये विशेष गुण होते हैं, उसे पुदगल द्रव्य कहते हैं।

१९. पुद्गल के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दो भेद हैं – 1. परमाणु और 2. स्कन्ध।

२०. परमाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता – ऐसे सबसे सूक्ष्म पुद्गल को परमाणु कहते हैं।

२१. स्कन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर :– दो या दो से अधिक परमाणुओं के बन्ध को स्कन्ध कहते हैं।

२२. बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस सम्बन्धविशेष से अनेक वस्तुओं में एकपने का ज्ञान होता है, उस सम्बन्धविशेष को बन्ध कहते हैं।

---

1. जीव और पुद्गल में क्रियावतीशक्ति नाम का गुण नित्य है, उसके कारण अपनी–अपनी योग्यतानुसार कभी क्षेत्रान्तररूप पर्याय होती है, कभी स्थिर रहनेरूप पर्याय होती है। कोई द्रव्य (जीव या पुद्गल) एक–दूसरे को गमन या स्थिरता नहीं करा सकते, दोनों द्रव्य अपनी–अपनी क्रियावतीशक्ति की उस समय की योग्यता के अनुसार स्वतः गमन करते हैं या स्थिर होते हैं।

२३. स्कन्ध के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– आहार वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनो वर्गणा, कार्माण वर्गणा इत्यादि 22 भेद हैं।

२४. आहार वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जो पुद्गलस्कन्ध (वर्गणा) औदारिक, वैक्रियक और आहारक – इन तीन शरीररूप से परिणमन करता है, उसे आहार वर्गणा कहते हैं।

२५. तैजस वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस पुद्गलस्कन्ध (वर्गणा) से तैजस शरीर बनता है, उसे तैजस वर्गणा कहते हैं।

२६. भाषा वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जो पुद्गलस्कन्ध (वर्गणा) शब्दरूप से परिणमित होता है, उसे भाषा वर्गणा कहते हैं।

२७. मनो वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस पुद्गलस्कन्ध (वर्गणा) से अष्टदल–कमल के आकाररूप द्रव्यमन की रचना होती है, उसे मनो वर्गणा कहते हैं।

२८. कार्माण वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस पुद्गलस्कन्ध (वर्गणा) से कार्माण शरीर वर्गणा बनता है, उसे कार्माण वर्गणा कहते हैं।

२९. शरीर कितने हैं ?

उत्तर :– शरीर पाँच हैं – 1. औदारिक 2. वैक्रियक 3. आहारक 4. तैजस और 5. कार्माण।

३०. औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर :– मनुष्य और तिर्यञ्च के स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

३१. वैक्रियक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जो छोटी–बड़ी, पृथक–अपृथक् आदि अनेक क्रियाओं को करे – ऐसे देव और नारकियों के शरीर को वैक्रियक शरीर कहते हैं।

३२. आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर :– आहारक ऋद्धिधारी छठवें गुणस्थानवर्ती मुनी को तत्त्वों के सम्बन्ध में कोई शंका होने पर अथवा जिनालय आदि की वंदना करने के लिए उनके मस्तक से एक हाथ प्रमाण स्वच्छ, सफेद, सप्तधातुरहित पुरुषाकार जो पुतला निकलता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं।

३३. तैजस शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर :– औदारिक, वैक्रियक और आहारक – इन तीन शरीरों में कान्ति उत्पन्न करनेवाले शरीर को तैजस शरीर कहते हैं।

३४. कार्मण शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर :– आठ कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं।

३५. एक जीव के एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं?

उत्तर :– एक जीव के एक साथ कम से कम दो और अधिक से अधिक चार शरीर हो सकते हैं। खुलासा इसप्रकार है – विग्रहगति में तैजस और कार्मण; मनुष्य और तिर्यञ्च के औरादिक, तैजस और कार्मण; देवों और नारिकियों के वैक्रियक, तैजस और कार्मण; तथा आहारकऋद्धिधारी मुनि के औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर होते हैं।

३६. धर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :– स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गल को गमन करने में जो निमित्त हो, उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे गमन करती हुई मछली को गमन करने में पानी।

३७. अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :– स्वयं गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणमन करने वाले जीव और पुद्गल को ठहरने में जो निमित्त हो, उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे पथिक को ठहरने में वृक्ष की छाया।

३८. आकाश द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जो जीवादिक पाँचों द्रव्यों को रहने के लिए स्थान देता है, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। आकाश द्रव्य सर्वव्यापक है, सर्वत्र है।

३९. आकाश के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– यद्यपि आकाश एक ही अखण्ड द्रव्य है, तथापि छह द्रव्यों की उपस्थिति व अनुपस्थिति के कारण उसके लोकाकाश व अलोकाकाश – ये दो भेद हैं।

४०. लोकाकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिसमें जीवादिक समस्त द्रव्य पाये जाते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं।

४१. अलोकाकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर :– लोकाकाश के बाहर अनन्त आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

४२. काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :– अपनी–अपनी अवस्थारूप से स्वयं परिणमते हुए जीवादिक द्रव्यों के परिणमन में जो निमित्त हो, उसे काल द्रव्य कहते हैं। जैसे कुम्हार के चाक को घूमने के लिए लोहे की कीली।

४३. काल के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दो भेद हैं – 1. निश्चय काल और 2. व्यवहार काल।

४४. निश्चय काल किसे कहते हैं ?

उत्तर :– काल द्रव्य को निश्चय काल कहते हैं तथा लोकाकाश के एक–एक प्रदेश पर एक–एक काल द्रव्य (कालाणु) स्थित है।

४५. व्यवहार काल किसे कहते हैं ?

उत्तर :– वर्ष, महीना, दिवस, घड़ी, पल वगैरह को व्यवहार काल कहते हैं।

४६. जीव–पुद्गलादि द्रव्य कितने–कितने हैं और उनका क्षेत्र क्या है ?

उत्तर :– जीव द्रव्य अनंतानंत हैं और संपूर्ण लोकाकाश में भरे हुए हैं। पुद्गल द्रव्य जीव द्रव्य से अनन्तगुने अधिक हैं और वे भी सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य एक–एक हैं और सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। आकाश द्रव्य एक और लोक व अलोक में व्याप्त है। काल द्रव्य असंख्यात हैं और वे सम्पूर्ण लोकाकाश के एक–एक प्रदेश में स्थित हैं।

४७. प्रत्येक जीव कितना बड़ा है ?

उत्तर :– प्रत्येक जीव प्रदेशों की संख्या–अपेक्षा से लोकाकाश के बराबर असंख्य प्रदेशवाला है, परन्तु संकोच–विस्तार के कारण अपने–अपने शरीर प्रमाण हैं और मुक्त जीव अन्तिम शरीर प्रमाण है।

४८. लोकाकाश के बराबर प्रमाणवाला जीव कौन हैं ?

उत्तर :– मोक्ष जाने के पहले केवली–समुद्घात करने वाला जीव लोकाकाश के बराबर प्रमाण वाला होता है।

४९. समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर :– मूल शरीर को न छोड़कर आत्म–प्रदेशों के बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं, यह प्रदेशत्व गुण की पर्याय है।

५०. अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– बहुप्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते हैं।

५१. कितने द्रव्य अस्तिकाय हैं ?

उत्तर :– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश – ये पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं।

५२. काल द्रव्य अस्तिकाय क्यों नहीं हैं ?

उत्तर :– काल द्रव्य एकप्रदेशी है, इसलिये वह अस्तिकाय नहीं हैं।

५३. पुद्गल परमाणु भी एकप्रदेशी है, फिर भी वह अस्तिकाय कैसे है?

उत्तर :– यद्यपि पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी है, फिर भी उसमें स्कन्धरूप होकर बहुप्रदेशी होने की शक्ति है; इसलिये उपचार से उसको अस्तिकाय कहा जाता है।

५४. प्रदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर :– आकाश के जितने भाग को एक पुद्गल परमाणु घेरता है, उसे प्रदेश कहते हैं।

५५. किस द्रव्य के कितने प्रदेश हैं ?

उत्तर :– जीव, धर्म, अधर्म और लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं। पुद्गल स्कन्ध के संख्यात, असंख्यात और अनन्त – इसतरह तीनों प्रकार के प्रदेश हैं। काल द्रव्य और पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी हैं।

५६. उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तर :– द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं।

५७. व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– द्रव्य में पूर्व पर्याय के त्याग को व्यय कहते हैं।

५८. ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :– प्रत्यभिज्ञान के कारणभूत द्रव्य की किसी अवस्था की नित्यता को ध्रौव्य कहते हैं।

५९. पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दो भेद हैं – 1. व्यंजन पर्याय और 2. अर्थ पर्याय।

६०. व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– द्रव्य के प्रदेशत्व गुण के विकार (विशेष कार्य) को व्यंजन पर्याय कहते हैं।

६१. व्यंजन पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दो भेद हैं – 1. स्वभाव व्यंजन पर्याय और 2. विभाव व्यंजन पर्याय।

६२. स्वभाव व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– परनिमित्त के सम्बन्ध से रहित द्रव्य का जो आकार हो, उसे स्वभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं। जैसे जीव की सिद्ध पर्याय।

६३. विभाव व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– परनिमित्त के सम्बन्ध से द्रव्य का जो आकार हो, उसे विभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं। जैसे जीव की नर–नारकादि पर्याय।

६४. अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– प्रदेशत्व गुण को छोड़कर बाकी गुणों के कार्य (परिणमन) को अर्थ पर्याय कहते हैं।

६५. अर्थ पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दो भेद हैं – 1. स्वभाव अर्थपर्याय और 2. विभाव अर्थपर्याय।

६६. स्वभाव अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– परनिमित्त के सम्बन्ध से रहित जो अर्थ पर्याय होती है, उसे स्वभाव अर्थ पर्याय कहते हैं। जैसे जीव की केवलज्ञान पर्याय।

६७. विभाव अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– परनिमित्त के सम्बन्ध से जो अर्थ पर्याय हो, उसे विभाव अर्थ पर्याय कहते हैं। जैसे जीव के राग–द्वेष आदि।

६८. किस–किस द्रव्य में कौन–कौनसी पर्यायें होती हैं?

उत्तर :– जीव और पुद्गल द्रव्य में स्वभाव अर्थ पर्याय, विभाव अर्थ पर्याय, स्वभाव व्यंजन पर्याय और विभाव व्यंजन पर्याय – इसप्रकार चारों पर्यायें होती हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य में स्वभाव अर्थ पर्याय और स्वभाव व्यंजन पर्याय – इसतरह केवल दो पर्यायें होती हैं।

६९. अनुजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :— भावस्वरूपी गुण को अनुजीवी गुण कहते हैं। जैसे दर्शन–ज्ञानरूप चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि।

७०. प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :— वस्तु के अभावस्वरूपी धर्म को प्रतिजीवी गुण कहते हैं। जैसे नास्तित्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व आदि।

७१. जीव के अनुजीवी गुण कौन–कौन से हैं ?

उत्तर :— चेतना, सम्यक्त्व (श्रद्धा), चारित्र, सुख वीर्य, भव्यत्व, अभव्यत्व, जीवत्व, वैभाविकत्व, कर्तृत्व इत्यादि अनन्त गुण हैं।

७२. जीव के प्रतिजीवी गुण कौन–कौन से हैं ?

उत्तर :— अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व इत्यादि।

७३. चेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर :— जिसमें पदार्थों का प्रतिभास होता है, उसे चेतना कहते हैं।

७४. चेतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर :— दो भेद हैं – 1. दर्शन चेतना व 2. ज्ञान चेतना।

७५. दर्शन चेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर :— जिसमें पदार्थों का भेदरहित सामान्य प्रतिभास (अवलोकन) हो, उसे दर्शन चेतना कहते हैं।

७६. ज्ञान चेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर :— जिसमें पदार्थों का विशेष प्रतिभास होता है, उसे ज्ञान चेतना कहते हैं।

७७. दर्शन चेतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर :— चार भेद हैं – 1. चक्षुदर्शन, 2. अचक्षुदर्शन 3. अवधिदर्शन और 4. केवलदर्शन।

७८. चक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर :– चक्षु इन्द्रिय के द्वारा मतिज्ञान के पहले होने वाले सामान्य प्रतिभास को चक्षुदर्शन कहते हैं।

७९. अचक्षु दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर :– चक्षु इन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों और मन के द्वारा, मतिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य प्रतिभास को अचक्षुदर्शन कहते हैं।

८०. अवधिदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर :– अवधिज्ञान के पहले होने वाले सामान्य प्रतिभास को अवधिदर्शन कहते हैं।

८१. केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर :– केवलज्ञान के साथ–साथ होने वाले सामान्य प्रतिभास को केवलदर्शन कहते हैं।

८२. दर्शन चेतना कब उत्पन्न होती है ?

उत्तर :– दर्शन चेतना छद्मस्थ जीवों को ज्ञान के पहले और केवलज्ञानियों को ज्ञान के साथ–साथ होती है।

८३. ज्ञान चेतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– पाँच भेद हैं – 1. मतिज्ञान 2. श्रुतज्ञान 3. अवधिज्ञान 4. मनःपर्ययज्ञान और 5. केवलज्ञान

८४. मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर :– (1) पराश्रय की बुद्धि छोड़कर दर्शनोपयोग– पूर्वक स्वसन्मुखता से प्रकट होने वाले निज आत्मा के ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं।

(2) इन्द्रिय और मन जिसमें निमित्त हैं – ऐसे ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं।

८५. श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर :– (1) मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के सम्बन्ध से अन्य पदार्थ

को जाननेवाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।

(2) आत्मा की शुद्ध अनुभूतिरूप श्रुतज्ञान परिणति को भाव श्रुतज्ञान कहते हैं।

८६. अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर :– द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादासहित रूपी पदार्थ के स्पष्ट प्रत्यक्ष ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं।

८७. मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर :– द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादासहित दूसरे के मन में स्थित रूपी पदार्थ के स्पष्ट प्रत्यक्ष ज्ञान को मनःपर्यायज्ञान कहते हैं।

८८. केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जो तीन लोक व तीन कालवर्ती सर्व पदार्थों (अनन्त धर्मात्मक सर्व द्रव्य–गुण–पर्यायों) को प्रत्येक समय में यथास्थित, परिपूर्णरूप से स्पष्ट और एक साथ जानते है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

८९. एक जीव में एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?

उत्तर :– एक जीव में एक साथ कम से कम एक और अधिक से अधिक चार ज्ञान होते हैं।

खुलासा इसप्रकार है –

केवलज्ञान अकेला ही होता है। एक साथ दो–मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होते हैं। एक साथ तीन – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान होते हैं। एक साथ चार – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान होते हैं।

९०. अनेकान्त किसे कहते हैं ?

उत्तर :– प्रत्येक वस्तु में वस्तुपने को निपजाने वाली अस्तित्व–नास्तित्व आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकान्त है।

आत्मा सदा स्वरूप से है और पररूप से नहीं — ऐसी दृष्टि ही सच्ची अनेकान्तदृष्टि है।

९१. स्याद्वाद किसे कहते हैं ?

उत्तर :– वस्तु के अनेकान्त स्वरूप को समझाने वाली कथन पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं।

स्याद्वाद अनेकान्त का द्योतक है, बतलानेवाला है। स्यात् = कथंचित्, किसीप्रकार, किसी अपेक्षा से; वाद = कथन।

९२. सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस गुण की निर्मल दशा प्रगट होने पर स्वशुद्धात्मा का प्रतिभास (यथार्थ प्रतीति) हो तथा सच्चे देव–गुरु–धर्म में दृढ़ आस्था, जीवादि सात तत्त्वों की सच्ची प्रतीति, स्व–पर का श्रद्धान एवं आत्मश्रद्धान – इन लक्षणों के अविनाभाव सहित जो श्रद्धान होता है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। [इस पर्याय का धारक सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण है, सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन उसकी क्रमशः स्वभाव और विभाव पर्यायें हैं।]

९३. जैन किसे कहते हैं ?

उत्तर :– निज शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय से मिथ्यात्व राग–द्वेषादि को जीतने वाली निर्मल परिणति जिसने प्रकट की है, वही जैन है। मिथ्यात्व के नाशपूर्वक जो जितने अंश में रागादि का नाश करता है, वह उतने अंश में जैन है। वास्तव में जैनत्व का प्रारम्भ निश्चय सम्यग्दर्शन से होता है, यह चतुर्थ गुणस्थान में प्रगट होता है।

९४. चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर :– निश्चय सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप में चरण करना (रमना) अर्थात् अपने स्वभाव में अकषायरूप प्रवृत्ति करना चारित्र है। मिथ्यात्व और अस्थिरता रहित अत्यन्त निर्विकार [1] – ऐसा यह चारित्र जीव का परिणाम है। ऐसी पर्याय को धारण करने वाले गुण को चारित्र गुण कहते हैं।

---

1. ऐसे परिणामों को स्वरूपस्थिरता, निश्चलता, वीतरागता, साम्य, धर्म और चारित्र कहते हैं। जब आत्मा के चारित्र गुण की शुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है, तब बाह्य और आभ्यंतर क्रिया का यथासंभव निरोध हो जाता है।

९५. कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– मिथ्यात्व तथा क्रोध–मान–माया–लोभरूप आत्मा की विभाव परिणति को कषाय कहते हैं।

९६. चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– चार भेद हैं – 1. स्वरूपाचरण चारित्र 2. देश चारित्र 3. सकल चारित्र और 4. यथाख्यात चारित्र।

९७. स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर :– निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर आत्मानुभव पूर्वक आत्मस्वरूप में जो स्थिरता होती है, उसे स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

९८. देश चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर :– निश्चय सम्यग्दर्शन सहित अनन्तानुबंधी तथा अप्रत्याख्यानावरण कषायों के अभावपूर्वक आत्मा में चारित्र की आंशिक शुद्धि होने से उत्पन्न होने वाली शुद्धि विशेष को देश चारित्र कहते हैं। इस श्रावकदशा में व्रतादिरूप शुभभाव होते हैं। शुद्ध (निश्चय) देश चारित्र से धर्म होता है और व्यवहार व्रतादिक से बंध होता हैं निश्चय चारित्र के बिना सच्चा व्यवहार चारित्र नहीं हो सकता।

९९. सकल चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर :– निश्चय सम्यग्दर्शन सहित चारित्र गुण की शुद्धि की वृद्धि होने से (अनंतानुबंधी आदि तीन जाति की कषायों के अभाव पूर्वक) आत्मा में उत्पन्न होने वाली (भावलिंगी मुनिपद के योग्य) शुद्धि विशेष को सकल चारित्र कहते हैं। मुनिपद में 28 मूलगुण आदि के शुभभाव होते हैं, उसे व्यवहार सकल चारित्र कहते हैं। निश्चय चारित्र आत्माश्रित होने से मोक्षमार्ग है, धर्म है और व्यवहार चारित्र पराश्रित होने से बन्धभाव है, मोक्षमार्ग नहीं।

१००. यथाख्यात चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर :– निश्चय सम्यग्दर्शन सहित चारित्र गुण की पूर्ण शुद्धता होने

से कषायों के सर्वथा अभाव पूर्वक उत्पन्न होने वाली आत्मा की शुद्धि विशेष को यथाख्यात चारित्र कहते हैं।

१०१. सुख किसे कहते हैं ?

उत्तर :– निराकुल आनन्दस्वरूप आत्मा के परिणाम विशेष को सुख कहते हैं।

१०२. वीर्य किसे कहते हैं ?

उत्तर :– आत्मा की शक्ति – सामर्थ्य (बल) को वीर्य कहते हैं। वीर्य गुण की पर्याय पुरुषार्थ है।

१०३. भव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस गुण के कारण आत्मा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्रगट करने की योग्यता रहती है; उसे भव्यत्व गुण कहते हैं।

१०४. अभव्यत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस गुण के कारण आत्मा में सम्यग्दर्शन– ज्ञान–चारित्र प्रगट करने की योग्यता नहीं होती है, उसे अभव्यत्व गुण कहते हैं।

१०५. जीवत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस गुण के कारण आत्मा चैतन्यमात्र भावरूप भाव प्राण धारण करता है, उस शक्ति को जीवत्व गुण कहते हैं।

१०६. प्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दो भेद हैं – 1. द्रव्य प्राण और 2. भाव प्राण।

१०७. द्रव्य प्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दस भेद हैं – पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल श्वासोच्छवास और आयु।

(ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं। जीवों की इन द्रव्य प्राणों के संयोग से जीवनरूप और उनके वियोग से मरणरूप अवस्था व्यवहार से कही जाती है।)

१०८. भाव प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– चैतन्य और बल प्राण को भाव प्राण कहते हैं।

१०९. भाव प्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दो भेद हैं [1] – 1. भावेन्द्रिय और 2. बल प्राण।

११०. भावेन्द्रिय [2] के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– पाँच भेद हैं – 1. स्पर्शन इन्द्रिय 2. रसना इन्द्रिय 3. घ्राण इन्द्रिय 4. चक्षु इन्द्रिय और 5. कर्ण इन्द्रिय।

१११. भाव बल प्राण [3] के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– तीन भेद हैं – 1. मनो बल 2. वचन बल और 3. काय बल।

११२. वैभाविक गुण [4] किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस गुण के कारण आत्मा में स्वयं अपनी योग्यता से परद्रव्य (निमित्त) के सम्बन्धपूर्वक अशुद्ध पर्यायें होती हैं। यह एक विशेष भाव वाला गुण है।

११३. अव्याबाधत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस गुण की शुद्ध पर्याय वेदनीय कर्म के अभावपूर्वक प्रगट होती है, उसको अव्याबाधत्व गुण कहते हैं।

११४. अवगाहनत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस गुण की शुद्ध पर्याय आयु कर्म के अभाव पूर्वक प्रगट होती है, उस गुण को अवगाहनत्व गुण कहते हैं।

---

1. ये भेद संसारी जीवों में हैं।
2. भावेन्द्रियाँ सब चेतन हैं और ज्ञान की मतिरूप पर्यायें हैं।
3. भाव बल प्राण जीव के वीर्य गुण की पर्याय है। द्रव्य बल प्राण पुद्गल के वीर्य गुण की पर्याय है।
4. यह वैभाविक गुण जीव और पुद्गल – इन द्रव्यों में ही है, शेष चार द्रव्यों में नहीं। मुक्त जीवों में इस गुण की शुद्ध स्वाभाविक पर्याय होती है।

११५. अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस गुण की शुद्ध पर्या गोत्र कर्म के अभावपूर्वक प्रगट होती है और उच्चता–नीचता का व्यवहार भी दूर हो जाता है, उस गुण को अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।

११६. सूक्ष्मत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिस गुण की शुद्ध पर्याय नाम कर्म के अभावपूर्वक प्रगट होती है, उस गुण को सूक्ष्मत्व गूण कहते हैं।[1]

११७. अभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर :– एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के न होने को अभाव कहते हैं।

११८. अभाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– अभाव के चार भेद हैं – 1. प्रागभाव 2. प्रध्वंसाभाव 3. अन्योन्याभाव और 4. अत्यन्ताभाव।

११९. प्रागभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर :– एक द्रव्य की वर्तमान पर्याय का उसी द्रव्य की पूर्व पर्याय में अभाव सो प्रागभाव है। (इसे न माना जाये तो कार्य अनादि ठहरे।)

१२०. प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर :– एक द्रव्य की वर्तमान पर्याय का उसी द्रव्य की आगामी पर्याय में अभाव सो प्रध्वंसाभाव है। (इसे न माना जाये तो कार्य अनन्तकाल ठहरे।)

१२१. अन्योन्याभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर :– एक पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय का अन्य पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय में अभाव अन्योन्याभाव है। (इसे न माना जाये तो एक पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय अन्य पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय से स्वतन्त्र और भिन्न नहीं ठहरे।)

---

1. प्रश्न 113 से 116 तक समागत अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व व सूक्ष्मत्व गुण – ये प्रतिजीवी गुण हैं।

१२२. अत्यंताभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर :– एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव अत्यंताभाव है। (इसे न माना जाये तो द्रव्य स्वतन्त्र और भिन्न नहीं ठहरे)

१२३. इन चार अभाव के समझने से क्या लाभ हैं ?

उत्तर :– (1) प्रागभाव से ऐसा समझना चाहिए कि अनादि काल से किसी जीव ने अज्ञान–मिथ्यात्वादि दोष किये हों, धर्म कभी नहीं किया हो तो भी वह जीव नये पुरुषार्थ से धर्म कर सकता है, क्योंकि वर्तमान पर्याय (अवस्था) का पूर्व पर्याय में अभाव है।

(2) प्रध्वंसाभाव से ऐसा समझना चाहिए कि किसी जीव ने वर्तमान अवस्था में धर्म न किया हो तो भी वह जीव उस अधर्म दशा का तुरन्त व्यय (अभाव) करके नये पुरुषार्थ से धर्म कर सकता है।

(3) अन्योन्याभाव से ऐसा समझना चाहिए कि एक पुद्‌गल द्रव्य की पर्याय, दूसरे पुद्‌गल की पर्यायों का कुछ भी नहीं कर सकती है अर्थात् एक-दूसरे को मदद, सहायता, असर या प्रेरणादि कुछ भी नहीं कर सकती।

(4) अत्यंताभाव से ऐसा समझना चाहिए कि प्रत्येक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अभाव होने से कोई द्रव्य अन्य द्रव्य की पर्यायों को कुछ भी नहीं करता अर्थात् सहायता, असर, मदद या प्रेरणा इत्यादि कुछ भी नहीं कर सकता। शास्त्र में जो कुछ अन्य में करने–कराने आदि का कथन है, वह घी के घडे के समान मात्र व्यवहार का कथन है, सत्यार्थ नहीं है।

चार अभावों के सम्बन्ध में ऐसी समझ करने से स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ होता है – यही सच्चा लाभ है।

१२४. तत्त्व कितने हैं ?

उत्तर :– जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष – ये सात तत्त्व हैं।

१२५. सातों तत्त्वों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर :– (1) जीव :– जीव अर्थात् आत्मा। जीव सदा ज्ञाता स्वरूप, पर से भिन्न और त्रिकाल स्थायी पदार्थ है।

(2) अजीव :– जिसमें चेतना या ज्ञातृत्व नहीं होता, उसे अजीव कहते हैं – ऐसे द्रव्य पाँच हैं। उनमें से धर्म, अधर्म, आकाश और काल – ये चार द्रव्य अरूपी हैं और पुद्‌गल द्रव्य रूपी (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से सहित) है।

(3) आस्रव :– जीव की शुभाशुभभावमय विकारी अवस्था को भावास्रव कहते हैं और उस समय कर्मयोग्य नवीन रजकणों का स्वयं–स्वतः आत्मा के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप में आगमन होना द्रव्यास्रव है। (इसमें जीव की अशुद्ध पर्याय निमित्त मात्र है।)

(4) बन्ध :– आत्मा का अज्ञान, राग–द्वेष, पुण्य–पापरूप विभावों में रुक जाना भावबन्ध है। उस समय कर्मयोग्य पुद्‌गलों का स्वयं–स्वतः जीव के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप बँधना द्रव्यबन्ध है। (इसमें जीव की अशुद्ध पर्याय निमित्त मात्र है।)

पुण्य–पाप भी आस्रव और बन्ध के ही भेद हैं :–

पुण्य :– दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, इत्यादि शुभ भाव जीव की पर्याय में होते हैं, ये अरूपी अशुद्ध भाव भावपुण्य हैं और उस समय कर्मयोग्य परमाणुओं का समूह स्वयं–स्वतः एकक्षेत्रावगाहरूप से जीव के साथ बँधता है, वह द्रव्यपुण्य है। (इसमें जीव की अशुद्ध पर्याय निमित्त मात्र है।)

पाप :– मिथ्यात्व, हिंसा, असत्य, चोरी इत्यादि अशुभ भाव जीव की पर्याय में होते हैं, ये अरूपी अशुद्ध भाव भावपाप हैं और उस समय कर्मयोग्य पुद्‌गल स्वयं–स्वतः जीव के साथ बँधता है, वह द्रव्यपाप है। (इसमें जीव की अशुद्ध पर्याय निमित्त मात्र है।)

वास्तव में पुण्य–पाप भाव (शुभाशुभ भाव) आत्मा को अहितकर हैं, आत्मा की क्षणिक अशुद्ध अवस्था है। द्रव्यपुण्य व द्रव्यपाप आत्मा का हित–अहित नहीं कर सकते।

(5) संवर :– आत्मा के शुद्ध भाव द्वारा पुण्य–पापरूप अशुद्ध भाव (आस्रव) को रोकना भावसंवर है, तदनुसार नये कर्मों का आगमन स्वयं–स्वतः रुक जाना द्रव्यसंवर है।

(6) निर्जरा :– अखण्डानन्द निज शुद्धात्मा के लक्ष के बल से आंशिक शुद्धि की वृद्धि और अशुद्ध अवस्था (शुभाशुभ इच्छारूप) की

आंशिक हानि होना भावनिर्जरा है, उस समय खिरने योग्य कर्मों का स्वयं–स्वतः अंशतः खिर जाना द्रव्यनिर्जरा है।

(7) मोक्ष :– आत्मा की पूर्ण शुद्ध पर्याय का प्रगट होना और अशुद्ध पर्याय का सर्वथा नाश होना भावमोक्ष है, उस समय अपनी योग्यता से द्रव्यकर्मों का आत्मप्रदेशों से अत्यन्त अभाव होना द्रव्यमोक्ष है।

१२६. मिथ्यादृष्टि जीव इन तत्त्वों के सम्बन्ध में कैसी भूलें करते हैं ?

उत्तर :– (1) जीव तत्त्व की भूल :- जीव तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है, उसे अज्ञानवश यह जीव नहीं जानता और 'जो शरीर है, वह मैं ही हूँ तथा शरीर के कार्य मैं कर सकता हूँ' – ऐसा मानता है। 'शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ होता है, बाह्य अनुकूल संयोग से मैं सुखी और बाह्य प्रतिकूल संयोग से मैं दुःखी, मैं निर्धन, मैं धनवान, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं कुरूप, मैं सुन्दर' – ऐसा मानता है; शरीराश्रित उपदेश उपवासादि क्रियाओं में निजत्व मानता है – ऐसा मानना ही जीव तत्त्व की भूल है।

(2) अजीव तत्त्व की भूल :- मिथ्या–अभिप्रायवश जीव ऐसा मानता है कि शरीर उत्पन्न होने से मेरा जन्म हुआ, शरीर का नाश होने से मैं मर जाऊँगा। धन, शरीर इत्यादि जड़ पदार्थों में परिवर्तन होने पर अपने में इष्ट–अनिष्ट परिवर्तन मानता है। शरीर की उष्ण–अवस्था होने पर 'मुझे बुखार आया', शरीर की क्षुधा–तृषादिरूप अवस्था होने पर 'मुझे क्षुधा–तृषादि लग रहे हैं' – ऐसा मानता है। शरीर कट जाने पर 'मैं कट गया' इत्यादिरूप अजीव की अवस्था को अज्ञानी जीव अपनी अवस्था मानते हैं – यही अजीव तत्त्व की भूल है।

(3) आस्रव तत्त्व की भूल :- मिथ्यात्व, राग–द्वेष शुभाशुभ भाव आस्रव हैं। ये भाव आत्मा को प्रगटरूप से दुःख देने वाले हैं, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव उन्हें हितरूप जानकर निरन्तर उनका सेवन करता है – यही आस्रव तत्त्व की भूल है।

(4) बन्ध तत्त्व की भूल :- जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी – दोनों बंधनकारक हैं; उसीप्रकार पुण्य और पाप – दोनों जीव को बंधनकारक हैं; परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा न मानकर पुण्य को अच्छा – हितकर

मानता है। तत्त्वदृष्टि से तो पुण्य–पाप – दोनों अहितकर ही हैं, परन्तु अज्ञानी जीव ऐसा नहीं मानता – यही बन्ध तत्त्व की भूल है।

(5) संवर तत्त्व की भूल :- निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान– चारित्र जीव को हितकारी हैं; किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव इनको कष्टदायक मानता है – यही संवर तत्त्व की भूल है।

(6) निर्जरा तत्त्व की भूल :- आत्मा में एकाग्र होकर शुभ और अशुभ – दोनों प्रकार की इच्छाएँ रोकने से निजात्मा की शुद्धि का प्रतपन होना तप है। उस तप से निर्जरा होती है, ऐसा तप सुखदायक है; परन्तु अज्ञानी उसे कष्टदायक मानता है आत्मा की ज्ञानादि अनन्त शक्तियों को भूलकर पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख मानकर उन्हीं में प्रीति करता है – यही निर्जरा तत्त्व की भूल है।

(7) मोक्ष तत्त्व की भूल :- आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा का प्रगट होना मोक्ष है। उसमें आकुलता का अभाव है, पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है; परन्तु अज्ञानी ऐसा नहीं मानकर शरीर के मौज–शौक में ही सुख मानता है। मोक्ष में देह, इन्द्रिय, खाना–पीना, मित्र आदि कुछ भी नहीं होते; इसलिये अतीन्द्रिय मोक्ष सुख को अज्ञानी नहीं मानता – यही मोक्ष तत्त्व की भूल है।

– इसप्रकार सातों तत्त्वों की भूल से अज्ञानी जीव अनन्त काल से संसार में भटक रहा है।

१२७. देव और गुरु का स्वरूप क्या है ?

उत्तर :– अर्हन्त और सिद्ध परमेष्ठी देव हैं और भावलिंगी दिगम्बर मुनि अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और साधु गुरु हैं भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत नियमसार गाथा 71 से 75 में पंच परमेष्ठियों का स्वरूप निम्नप्रकार दिया है :–

(1) अर्हन्त का स्वरूप :- घनघातिकर्म रहित, केवलज्ञानादि परम गुणों सहित और चौंतीस अतिशय संयुक्त – ऐसे अर्हन्त होते हैं।

[बाह्य–आभ्यंतर सब मिलाकर 46 गुण अर्हन्तदेव के होते हैं। अर्हन्त और सिद्ध भगवान को दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग एक साथ वर्तते हैं, क्रम से नहीं।]

(2) सिद्ध का स्वरूप :– जिन्होंने आठ कर्म के बन्ध को नष्ट किया है, जो आठ महागुणों से सहित हैं, लोक के अग्रभाग में स्थित हैं और जो नित्य हैं – ऐसे सिद्ध होते हैं।

[सिद्ध भगवान में व्यवहार से आठ गुण और निश्चय से अनन्त गुण हैं।]

(3) आचार्य का स्वरूप :– पंचाचारों से परिपूर्ण पंचेन्द्रियरूपी हाथी के मद का दलन करनेवाले, धीर और गुणगम्भीर – ऐसे आचार्य होते हैं।

[आचार्य के 36 गुण होते हैं।]

(4) उपाध्याय का स्वरूप :– रत्नत्रय से संयुक्त, जिनकथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक और निःकांक्षभावसहित – ऐसे उपाध्याय होते हैं।

[उपाध्याय के 25 गुण होते हैं, वे मुनियों के शिक्षक – अध्यापक हैं।]

(5) साधु का स्वरूप :– विषयों की आशा और समस्त व्यापार से विमुक्त, चार प्रकार की आराधना में सदा लवलीन, निग्रन्थ और निर्मोही – ऐसे साधु होते हैं।

[साधु के 28 मूलगुण होते हैं।]

(6) आचार्य, उपाध्याय और साधु का सामान्य स्वरूप :– जो निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान सहित विरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्यागकर, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके, अन्तरंग में तो उस शुद्धोपयोग के द्वारा अपने आत्मा का अनुभव करते हैं, परद्रव्य में अहंबुद्धि नहीं करते, ज्ञानादि स्वभाव को ही अपना मानते हैं, परभावों में ममत्व नहीं करते, किसी को इष्ट–अनिष्ट मानकर उनमें राग–द्वेष नहीं करते, हिंसादि अशुभोपयोग का तो उनके अस्तित्व ही मिट चुका है, हर अन्तर्मुहूर्त के बाद सातवें गुणस्थान के निर्विकल्प आनन्द में लीन रहते हैं; जब छठवें गुणस्थान में आते हैं, तब अट्ठाईस मूलगुणों के अखण्ड पालन के लिए शुभ विकल्प आता है – ऐसे ही जैन मुनि (गुरु) होते हैं।

१२८. धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर :– निज आत्मा की अहिंसा को धर्म कहते हैं।

१२९. सात तत्वों की यथार्थ श्रद्धा में देव—गुरु—धर्म की श्रद्धा कैसे आ जाती है ?

उत्तर :— (1) मोक्ष तत्त्व सर्वज्ञ—वीतराग स्वभावरूप है, उसके धारक अर्हन्त—सिद्ध हैं और वे ही निर्दोष देव हैं; इसलिये जिसे मोक्षतत्व की श्रद्धा है, उसे सच्चे देव की श्रद्धा है।

(2) संवर—निर्जरा निश्चय रत्नत्रय स्वभाव सहित है। उसके धारक भावलिंगी आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं। वे ही निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु हैं; इसलिये जिसे संवर —निर्जरा की सच्ची श्रद्धा है, उसे सच्चे गुरु की श्रद्धा है।

(3) जीव तत्त्व का स्वभाव रागादि भाव रहित शुद्ध चैतन्यप्राणमय है, उसके स्वभाव सहित अहिंसा धर्म है; इसलिये जिसे शुद्ध जीव की श्रद्धा है, उसे अहिंसारूप धर्म की श्रद्धा है।

१३०. कर्त्ता किसे कहते हैं ?

उत्तर :— जो स्वतंत्रता (स्वाधीनता) से अपने परिणाम को करे, वह कर्त्ता है।

[प्रत्येक द्रव्य अपने में स्वतन्त्रता व्यापक होने से अपने ही परिणामों का कर्त्ता है।]

१३१. कर्म (कार्य) किसे कहते हैं ?

उत्तर :— जिस परिणाम को कर्त्ता प्राप्त करता है, वह परिणाम उसका कर्म है।

१३२. करण किसे कहते हैं ?

उत्तर :— परिणाम (कर्म) के साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं।

१३३. सम्प्रदान किसे कहते हैं ?

उत्तर :— जिसे कर्म (कार्य) दिया जाय या जिसके लिये कर्म किया जाता है, उसे सम्प्रदान कहते हैं।

१३४. अपादान किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिसमें से कर्म किया जाता है, उस ध्रुव वस्तु को अपादान कहते हैं।

१३५. अधिकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जिसमें या जिसके आधार से कर्म किया जाता है, उसे अधिकरण कहते हैं।

[सर्व द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय में ये छहों कारक एक साथ वर्तते हैं, इसलिये आत्मा और पुद्गल शुद्ध या अशुद्ध दशा में छहों कारकरूप स्वयं ही परिणमन करते हैं और अन्य कारकों (कारणों) की अपेक्षा नहीं रखते।[1]]

१३६. कार्य होने का क्या नियम है ?

उत्तर :– 'कारणानुविधायित्वादेव कार्याणां कारणानुविधायीनि कार्याणि' – कारण जैसे ही कार्य का नियम होने से, कारण जैसा ही कार्य होता है।

[कार्य को क्रिया, कर्म, अवस्था पर्याय, हालत, दशा, परिणाम, परिणमन और परिणति भी कहते हैं। यहाँ कारण को उपादान कारण समझना चाहिये, क्योंकि उपादान कारण ही कार्य का सच्चा कारण है।]

१३७. कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– कार्य की उत्पादक सामग्री को कारण कहते हैं।

१३८. कारण के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– दो भेद हैं – 1. उपादान और 2. निमित्त।

[उपादान को निजशक्ति अथवा निश्चय और निमित्त को परयोग अथवा व्यवहार भी कहते हैं।]

१३९. उपादान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– उपादान कारण को तीन प्रकार से समझ सकते हैं –

(1) जो द्रव्य स्वयं कार्यरूप परिणमित हो, उसे उपादानकारण कहते

1. षट्कारकों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी पंचास्तिकाय, गाथा 62 में दी गई है।

हैं। जैसे घट की उत्पत्ति में मिट्टी।

(2) अनादिकाल से द्रव्य में जो पर्यायों का प्रवाह चला आ रहा है, उसमें अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती पर्याय उपादान कारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती पर्याय कार्य है।

(3) तत्समय की पर्याय की योग्यता उपादान कारण है और वह पर्याय कार्य है।

यह ही सच्चा (वास्तविक) कार्य–कारण है।

१४०. योग्यता किसे कहते हैं ?

उत्तर :– योग्यतैव विषयप्रतिनियमकारणमिति [1]

अर्थात् योग्यता ही विषय का प्रतिनियामक कारण है।

[सामर्थ्य, शक्ति, पात्रता, लायकात, ताकत – ये सब योग्यता के पर्यायवाची शब्द हैं।]

१४१. निमित्त कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप तो न परिणमे, परन्तु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आ सके, उस पदार्थ को निमित्त कारण कहते हैं। जैसे घट की उत्पत्ति में कुम्भकार, दण्ड, चक्र, आदि।

(निमित्त सच्चा कारण नहीं है, अहेतुक है क्योंकि वह उपचारमात्र अथवा व्यवहारमात्र कारण है।)

१४२. उपादान और निमित्त की उपस्थिति का क्या नियम है ? भैया भगवतीदासजी कृत निम्न दोहों के सम्बन्ध में समाधान करें :–

शंका १. गुरु उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन।
ज्यों नर दूजे पाँव बिन, चलवे को आधीन।।

शंका २. हौं जाने था एक ही, उपादान सौं काज।
थकै सहाई पौन बिन, पानी माँहिं जहाज।।

1. न्यायदीपिका : अभिनव धर्मभूषण यति

प्रथम शंका का समाधान

ज्ञान नैन किरिया चरण, दोऊ शिवमग धार।
उपादान निश्चय जहाँ, तहाँ निमित्त व्योहार।।

अर्थ :– सम्यग्दर्शन–ज्ञानरूप नेत्र और सम्यक्चारित्ररूप चरण अर्थात् लीनतारूप क्रिया – दोनों मिलकर मोक्षमार्ग हैं। उपादानरूप निश्चय कारण जहाँ हो, वहाँ निमित्तरूप व्यवहार कारण होता ही है।

भावार्थ :– (1) उपादान, निश्चय अर्थात् सच्चा कारण है और निमित्त, व्यवहार अर्थात् उपचार कारण है, सच्चा कारण नहीं है; इसलिये उसे अहेतुवत् कहा है। यद्यपि वह उपादान का कुछ कार्य नहीं करता, तथापि कार्य के समय उसकी उपस्थिति के कारण उसे उपचार मात्र कारण कहा है। (2) सम्यग्दर्शन–ज्ञान और सम्यक्लीनता को मोक्षमार्ग जानो – ऐसा कहा है – इसी से शरीराश्रित उपदेश, उपवास आदिक क्रिया और शुभरागरूप व्यवहार को मोक्षमार्ग न जानो – यह बात आ जाती है।

उपादान निज गुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान परमाण विधि, विरला बूझे कोय।।

अर्थ :– जहाँ निजशक्तिरूप उपादान तैयार हो, वहाँ पर निमित्त होता ही है – ऐसी भेदज्ञान–प्रमाण की विधि (व्यवस्था) है; यह सिद्धान्त कोई विरले ही समझते हैं।

भावार्थ :– जहाँ उपादान की योग्यता हो, वहाँ नियम से निमित्त होता है। निमित्त की राह देखना पड़े – ऐसा नहीं है और निमित्त को हम जुटा सकें – ऐसा भी नहीं है। निमित्त की राह देखनी पड़ती है या उसे मैं ला सकता हूँ – ऐसी मान्यता परपदार्थ में अभेदबुद्धि की अर्थात् अज्ञान की सूचक है। निमित्त और उपादान – दोनों असहायरूप हैं।

उपादान बल जहाँ तहाँ, नहीं निमित्त को दाव।
एक चक्र सौं रथ चलै, रवि को यहै स्वभाव।।

अर्थ :– जहाँ देखो वहाँ सदा उपादान का ही बल है। निमित्त होते जरूर हैं, परन्तु निमित्त का कुछ भी दाव (बल) नहीं है। जैसे एक चक्र से

सूर्य का रथ चलता है, उसीप्रकार प्रत्येक कार्य उपादान की योग्यता (सामर्थ्य) से ही होता है।

द्वितीय शंका का समाधान

सधै वस्तु असहाय जहाँ, तहाँ निमित्त है कौन।
ज्यों जहाज परवाह में, तिरे सहज बिन पौन।।

अर्थ :– प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्रता से अपनी अवस्था (कार्य) को प्राप्त करती है, वहाँ निमित्त कौन है ? जैसे जहाज प्रवाह में पवन बिना ही सहज तैरता है।

भावार्थ :– जीव और पुद्‌गल द्रव्य शुद्ध या अशुद्ध अवस्था में स्वतन्त्रपने से ही अपने परिणाम को करते हैं। अज्ञानी जीव भी स्वतन्त्रपने से निमित्ताधीन परिणाम करता है, कोई निमित्त उसे आधीन नहीं बना सकता।

उपादान विधि निर्वचन, है निमित्त उपदेश।
वसे जु जैसे देश में, करे सु तैसे भेष।।

अर्थ :– उपादान की विधि निर्वचन होने से 'निमित्त द्वारा यह कार्य हुआ' – ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

भावार्थ :– उपादान का कथन एक 'योग्यता' शब्द द्वारा ही होता है। उपादान अपनी योग्यता से अनेक निमित्त पर कारणपने का आरोप आता है।

विशेषार्थ :– उपादान जब जैसे कार्य को करता है, तब वैसे कारणपने का आरोप निमित्त पर आता है। जैसे कोई वज्रकाय मनुष्य सातवें नरक के योग्य मलिनभाव करता है तो वज्रकाय पर नरक के कारणपने का आरोप आता है और यदि जीव मोक्ष के योग्य निर्मल भाव करता है तो उसी निमित्त पर मोक्ष के कारणपने का आरोप आता है। इसप्रकार उपादान के कार्यानुसार निमित्त में भी कारणपने का आरोप किया जाता है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि निमित्त से कार्य तो नहीं होता, बल्कि कथन होता है; अतः उपादान सच्चा कारण है और निमित्त आरोपित कारण है।

१४३. क्या पुद्गल कर्म, योग, इन्द्रियों के भोग, धन, घर के लोग, मकान इत्यादि जीव को राग–द्वेष परिणाम उत्पन्न कराने में प्रेरक हैं ?

उत्तर :– छहों द्रव्य अपने–अपने स्वरूप से सदा असहाय (स्वतन्त्र) परिणमन करते हैं। कोई किसी का प्रेरक कभी नहीं है, इसलिये कोई भी परद्रव्य राग–द्वेष के प्रेरक नहीं हैं; परन्तु मिथ्यात्व मोहरूप मदिरापान ही (अनन्तानुबन्धी) राग–द्वेष का कारण है।

१४४. पुद्गल कर्म की बलवत्ता से जीव को मोह–राग–द्वेष करना पड़ता है; पुद्गल द्रव्य कर्मों का भेष धर–धरकर ज्यों–ज्यों अधिक बलप्रयोग करते हैं, त्यों–त्यों जीव को अधिक राग–द्वेष होते हैं – क्या यह बात सच है ?

उत्तर :– नहीं; क्योंकि जगत में पुद्गल का संग तो हमेशा रहता है, यदि उसकी बलवत्ता से जीव को रागादि विकार हो तो शुद्ध भावरूप होने का कभी अवसर ही नहीं आ सकता, इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि शुद्ध या अशुद्ध परिणमन करने में चेतन स्वयं समर्थ है।[1]

निमित्त के कहीं प्रेरक और उदासीन – ऐसे दो भेद कहे हों तो वहाँ वे गमनक्रियावान अथ्ज्ञवा इच्छावान हैं या नहीं – ऐसा समझाने के लिये हैं; परन्तु उपादान के लिये तो सर्व प्रकार के निमित्त धर्मास्तिकायवत् उदासीन ही कहे हैं।[2]

१४५. निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जब उपादान स्वतः कार्यरूप परिणमता है, तब भावरूप या अभावरूप किस उचित (योग्य) निमित्त कारण का उसके साथ सम्बन्ध है – यह बताने के लिये उस कार्य को नैमित्तिक कहते हैं। इस तरह से भिन्न पदार्थों के इस स्वतन्त्र सम्बन्ध को निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध कहते हैं।

निमित्त–नैमित्तिक परतन्त्रता का सूचक नहीं है, किन्तु नैमित्तिक के साथ कौन निमित्तरूप पदार्थ है; उसका ज्ञान कराता है। जिस कार्य को निमित्त की अपेक्षा नैमित्तिक कहा है, उसी को उपादान की अपेक्षा उपादेय भी कहते हैं।

1. समयसार नाटक, सर्वविशुद्ध द्वार, काव्य 61 से 63
2. इष्टोपदेश, गाथा 35

निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध के दृष्टान्त :–

(1) केवलज्ञान नैमित्तिक है और लोकालोकरूप सब ज्ञेय निमित्त है। (प्रवचनसार गाथा 26 की टीका)

(2) सम्यग्दर्शन नैमित्तिक है और सम्यग्ज्ञानी के उपदेशादि निमित्त हैं। (आत्मानुशासन श्लोक 10 की टीका)

(3) सिद्ध दशा नैमित्तिक हैं और पुद्गल कर्म का अभाव निमित्त है। (समयसार गाथा 82 की टीका)

(4) जैसे अधःकर्म से उत्पन्न और उद्देश्य से उत्पन्न हुए निमित्तभूत आहारादि पुद्गल द्रव्य का प्रत्याख्यान न करता हुआ आत्मा (मुनि) नैमित्तिकभूत बन्धसाधक भाव का प्रत्याख्यान (त्याग) नहीं करता, उसी प्रकार समस्त परद्रव्य का प्रत्याख्यान न करता हुआ आत्मा उसके निमित्त से होनेवाले भाव को नहीं त्यागता – इसमें परद्रव्य निमित्त है। (समयसार गाथा 286–287 की टीका)

१४६. मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर :– प्रयोजनभूत जीवादि सात तत्त्वों के अन्यथा श्रद्धान तथा अदेव (कुदेव) को देव मानना, अतत्त्व को तत्त्व मानना, अधर्म (कुधर्म) को धर्म मानना – इत्यादि विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं।

१४७. मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– पाँच भेद हैं – 1. एकांत, 2. विपरीत, 3. संशय, 4. अज्ञान और 5. विनय।

१४८. एकांत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर :– आत्मा, परमाणु आदि सर्व पदार्थों का स्वरूप अपने–अपने अनेक धर्मों से परिपूर्ण होने पर भी, उन्हें सर्वथा एक ही धर्म वाला मानने को एकांत मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे आत्मा को सर्वथा क्षणिक अथवा नित्य ही मानना, गुण–गुणी में सर्वथा भेद या अभेद ही मानना इत्यादि।

१४९. विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर :– आत्मा के स्वरूप को अन्यथा मानने की रुचि को विपरीत

मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे शरीर को आत्मा मानना, वस्त्र–पात्रादि सहित गुरु को निर्ग्रंथ गुरु मानना, स्त्री के शरीर से मुनिदशा एवं मोक्ष मानना। केवली भगवान को ग्रासाहार, रोग, उपसर्ग, वस्त्र, पात्र, पाटादि सहित और क्रमिक उपयोग वाला मानना। पुण्य से अर्थात् शुभराग से धर्म मानना।

१५०. संशय मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर :– 'धर्म का स्वरूप इसप्रकार है या इसप्रकार है' – ऐसे परस्पर विरुद्ध श्रद्धान को संशय मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे आत्मा अपने कार्य का कर्त्ता है या परवस्तु के कार्य का कर्त्ता है ? निमित्त और व्यवहार के आलम्बन से धर्म होगा या अपने शुद्धात्मा के आलम्बन से धर्म होगा ? इत्यादि।

१५१. अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर :– जहाँ हित–अहित के विवेक का कुछ भी सद्भाव नहीं हो, उसे अज्ञान मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे पशुवध अथवा पाप से धर्म समझना।

१५२. विनय मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर :– समस्त देवों और सर्व मतों में समदर्शीपने की मान्यता को विनय मिथ्यात्व कहते हैं।

१५३. मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर :– प्रयोजनभूत जीवादि सात तत्त्वों के यथार्थ न जानने को मिथ्याज्ञान कहते हैं।

१५४. मिथ्याज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– मिथ्याज्ञान के तीन भेद हैं – 1. संशय 2. विपर्यय और 3. अनध्यवसाय।

१५५. संशय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– 'यह इसप्रकार है या इसप्रकार है' – ऐसे परस्पर विरुद्धता सहित ज्ञान को संशय कहते हैं। जैसे मैं आत्मा हूँ या शरीर ?

१५६. विपर्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– 'ऐसा ही है' – इसप्रकार वस्तुस्वरूप से विरुद्ध एकरूप ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। जैसे मैं शरीर ही हूँ।

१५७. अनध्यवसाय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– 'कुछ है' – इस तरह के निश्चय रहित ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं। जैसे मैं कोई हूँ।

१५८. अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर :– अन्तरंग चारित्र संबंधी निर्विकार स्वसंवेदन से विपरीत अव्रत परिणामरूप विकार को अविरति कहते हैं।

बाह्य में त्रस–स्थावर जीवों की हिंसा में तथा पाँच इन्द्रिय और मन के विषयों में प्रवृत्ति करने को अविरति कहते हैं।

१५९. अविरति के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– बारह भेद हैं – षट्काय के जीवों की हिंसा का त्यागभाव नहीं करना तथा पाँच इन्द्रिय और मन के विषयों में प्रवृत्ति करना – इसप्रकार अविरति के बारह भेद हैं।

१६०. प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर :– अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान कषायों के उदय में युक्त होने को, संज्वलन और नोकषाय के तीव्र उदय में युक्त होने को, निरतिचार चारित्र पालने में अनुत्साह को तथा स्वरूप की असावधानता को प्रमाद कहते हैं।

१६१. प्रमाद के कितने भेद हैं ?

उत्तर :– पन्द्रह भेद हैं –

चार विकथा :– स्त्री कथा, राष्ट्र कथा, भोजन कथा, राज कथा।

चार कषाय :– क्रोध, मान, माया, लोभ।

पाँच इन्द्रिय के विषय :– स्पर्श, रस, गंध वर्ण, शब्द;

निद्रा और प्रणय (स्नेह)।

१६२. कषाय और नोकषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर :– कषाय – मिथ्यात्व तथा क्रोध, मान, माया, लोभरूप आत्मा की अशुद्ध परिणति को कषाय कहते हैं।

नोकषाय – हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेदरूप आत्मा की अशुद्ध परिणति को नोकषाय कहते हैं।

१६३. योग किसे कहते हैं ?

उत्तर :– मन, वचन, काय के आलम्बन से आत्मप्रदेशों के परिस्पंदन को योग कहते हैं।

योग गुण की अशुद्धपर्याय में कंपनपने को तो द्रव्ययोग और कर्म–नोकर्म के ग्रहण में निमित्तरूप योग्यता को भावयोग कहते हैं।

१६४. नव देव कौन–कैन से हैं ?

उत्तर :– अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर – ये नव देव हैं।

१६५. मंगल, ओम् (ॐ), श्री एवं स्वस्तिक (卐) – इनसे क्या तात्पर्य हैं ?

उत्तर :– मंगल – जो पाप को गलावे और पवित्रता को लावे – ऐसा सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र मंगल है।

ओम् (ॐ) – शुद्धात्मा, तीर्थंकर, केवली भगवान की दिव्यध्वनि, पंचपरमेष्ठी।

श्री – केवलज्ञानरूपी आत्मलक्ष्मी।

स्वस्तिक (卐) – साँथिया, चार गतिरूप संसार–भ्रमण को नष्ट करनेवाले अनंत चतुष्टय – अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य (बल)।

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

परिशिष्ट

परिभाषिक शब्द

पृष्ठ

(अ)

7. अस्तित्व गुण
7. अगुरुलघुत्व गुण
11. अधर्म द्रव्य
11. अलोकाकाश
12. अस्तिकाय
14. अर्थ पर्याय
14. अर्थ पर्याय के भेद
15. अनुजीवी गुण
16. अचक्षुदर्शन
16. अवधिदर्शन
17. अवधिज्ञान
17. अनेकान्त
20. अभव्यत्व गुण
22. अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण
21. अवगाहनत्व प्रतिजीवी गुण
21. अव्याबाधत्व प्रतिजीवी गुण
22. अभाव
22. अन्योन्याभाव
23. अत्यंताभाव
23. अभाव समझने से लाभ
24. अजीव
25. अजीव तत्त्व की भूल
26. अर्हंत का स्वरूप
29. अपादान
29. अधिकरण
35. अज्ञान मिथ्यात्व
36. अनध्यवसाय
36. अविरति

(आ)

9. आहार वर्गणा
10. आहारक शरीर
11. आकाश
24. आस्रव
25. आस्रव तत्त्व की भूल
27. आचार्य का स्वरूप

(उ)

16. उत्पाद
38. उपादान कारण
39. उपादान–निमित्त का नियम
34. उपाध्याय का स्वरूप

(ए)

10. एक जीव के साथ कितने शरीर?
17. एक जीव में एक साथ कितने ज्ञान ?
34. एकान्त मिथ्यात्व

(औ)

9. औदारिक शरीर

(क)

19. कषाय
28. कर्म (कार्य)
28. कर्त्ता
28. करण
37. कषाय–नोकषाय
29. कारण
9. कार्माण वर्गणा
10. कार्माण शरीर

11. काल द्रव्य
13. काल द्रव्य अस्तिकाय क्यों नहीं?
12. कितने द्रव्य अस्तिकाय हैं ?
13. किस द्रव्य के कितने प्रदेश हैं?
17. केवलज्ञान
16. केवलदर्शन

(ग)

6. गुण

(च)

15. चेतना
16. चक्षुदर्शन
18. चारित्र

(ज)

8. जीव द्रव्य
12. जीवपुद्गलादि द्रव्य कितने-कितने हैं और उनका क्षेत्र क्या है ?
15. जीव के अनुजीवी गुण
15. जीव के प्रतिजीवी गुण
18. जैन
20. जीवत्व गुण
23. जीव तत्त्व
25. जीव तत्त्व की भूल

(त)

9. तैजस वर्गणा
10. तैजस शरीर
23. तत्त्व कितने हैं ?

(द)

6. द्रव्य
7. द्रव्यत्व गुण
15. दर्शन चेतना
19. देशचारित्र
20. द्रव्यप्राण के भेद
26. देव–गुरु का स्वरूप

(ध)

10. धर्म द्रव्य
13. ध्रौव्य
27. धर्म

(न)

11. निश्चय काल
24. निर्जरा
30. निमित्तकारण
33. निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध
37. नव देव

(प)

6. पर्याय
7. प्रमेयत्व गुण
7. प्रदेशत्व गुण
7. प्रत्येक द्रव्य के विशेष गुण
8. पुद्गल द्रव्य
8. परमाणु
12. प्रत्येक जीव कितना बड़ा है ?
13. प्रदेश
13. पुद्गल परमाणु भी एक प्रदेशी है, वह अस्तिकाय कैसे ?
15. प्रतिजीवी गुण
20. प्राण के भेद
22. प्रागभाव
22. प्रध्वंसाभाव
24. पुण्य
24. पाप
33. पुद्गलकर्म, योग, आदि जीव को राग–द्वेष के प्रेरक हैं ?
36. प्रमाद

(ब)
8. बन्ध (सम्बन्ध विशेष)
24. बन्ध तत्त्व
25. बन्ध तत्त्व की भूल
(भ)
9. भाषा वर्गणा
20. भव्यत्व गुण
21. भाव प्राण
21. भावेन्द्रिय के भेद
21. भाव बल प्राण के भेद
(म)
9. मनो वर्गणा
16. मतिज्ञान
17. मनःपर्ययज्ञान
25. मोक्ष
26. मोक्ष तत्त्व की भूल
34. मिथ्यात्व
35. मिथ्याज्ञान
(य)
19. यथाख्यात चारित्र
30. योग्यता
(ल)
11. लोकाकाश
12. लोकाकाश के बराबर कौन जीव?
37. योग
(व)
6. विश्व
6. विशेष गुण
7. वस्तुत्व गुण
10. वैक्रियक शरीर
12. व्यवहार काल
13. व्यंजन पर्याय
13. व्यय
14. विभाव व्यंजन पर्याय
14. विभाव अर्थ पर्याय
20. वीर्य
21. वैभाविक गुण
34. विपरीत मिथ्यात्व
36. विपर्यय
35. विनय मिथ्यात्व
(स)
6. सामान्य गुण
8. स्कन्ध
12. समुद्घात
14. स्वभाव व्यंजन पर्याय
14. स्वभाव अर्थ पर्याय
18. स्याद्वाद
18. सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण
19. स्वरूपाचरण चारित्र
19. सकल चारित्र
20. सुख
22. सूक्ष्मत्व (प्रतिजीवी) गुण
24. संवर
26. संवर तत्त्व की भूल
28. सात तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा में देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा
28. सम्प्रदान
35. संशय मिथ्यात्व
35. संशय मिथ्याज्ञान
(ज्ञ)
15. ज्ञान चेतना

❄ ✡ ❄

महावीर वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण-तारण भव-निवारण, भव जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश तीर्थंकर, स्वयं महावीर हैं।।

जो राग-द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में।।
युगपद् विशद सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।।

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार है।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावे पार है।।
बस वीतराग-विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है।।

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है।।
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई है, अणु-अणु स्वयं में लीन है।।

आतम बने परमात्मा हो, शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में।।

- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल